डॉ० ओम प्रकाश शर्मा
महाराजा कॉलेज, आरा

बी० ए० स्नातक सेमेस्टर - V
विषय - संस्कृत, MJC - VIII
गुण-विवेचन (तर्कसंग्रह)

रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, शब्द, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म अधर्म और संस्कार- ये चौबीस 'गुण' हैं।
चक्षुमात्र से ग्राह्य गुण को रूप, रसना से ग्राह्य गुण को रस, घ्राण से ग्राह्य गुण को गन्ध, तथा त्वगिन्द्रिय मात्र से ग्राह्य गुण को स्पर्श कहते हैं। एकत्व आदि व्यवहार के हेतु गुण को संख्या कहते हैं। मान = माप के व्यवहार के असाधारण कारण को परिमाण कहते हैं। पृथक् व्यवहार के असाधारण कारण को पृथक्त्व कहते हैं। संयुक्त व्यवहार के हेतु गुण को संयोग कहते हैं; संयोग के नाशक गुण को विभाग कहते हैं। पर और अपर व्यवहार के हेतु गुण को क्रमशः परत्व और अपरत्व कहते हैं। आद्य-पतन के असमवायिकारण गुण को गुरुत्व कहते हैं। आद्य-स्पन्दन के असमवायिकारण को द्रवत्व कहते हैं। चूर्ण आदि के पिण्डत्व के कारण गुण को स्नेह कहते हैं। श्रोत्र = कर्ण इन्द्रिय से ग्राह्य गुण को शब्द कहते हैं। सम्पूर्ण व्यवहारों का कारणरूप गुण बुद्धि कहा जाता है।

सुख - सभी को अभीष्ट (अच्छा लगने वाला) के रूप में अनुभव होने वाला सुख है - सर्वेषामनुकूल-तया वेदनीयं सुखम्। अन्नम्भट्ट के अनुसार सुख का असाधारण धर्म कथन पर आधारित लक्षण तो यह है - 'मैं सुखी हूँ'। इस प्रकार के अनुभव से प्रतीत होने वाली सुखत्व आदि जाति से युक्त सुख है।

दुःख - जो सबको प्रतिकूल प्रतीत हो वह दुःख है - सर्वेषां प्रतिकूलतया वेदनीयं दुःखम्। अन्नम्भट्ट के अनुसार दुःख का कथन भी दुःख का स्वरूप कथन ही है। लक्षण तो 'मैं दुःखी हूँ'। इस प्रकार के अनुभव से सिद्ध दुःखत्व जाति से युक्त दुःख होता है।

इच्छा - काम इच्छा है। यह मेरे हैं। यह मैं करूँ - इस प्रकार की अस्तु - करोति विषयक कामना - इच्छा होती है। यह दो तरह की होती है - (i) उपेय (फल) विषयक - यह भी दो प्रकार की होती है - (क) भाव परक - सुख होवे और (ख) अभावपरक दुःख न होवे, तथा (ii) उपाय विषयक - सुखप्राप्ति के साधन की इच्छा।

द्वेष - क्रोध द्वेष का पर्याय है। मैं द्वेष करता हूँ। इस प्रकार के अनुभव से सिद्ध द्वेषत्व जाति से युक्त होता है। तथा इसी को क्रोध कहते हैं। यह भी दो प्रकार का है - (i) उपेयविषयक - दुःख के प्रति। और (ii) उपायविषयक - दुःखप्राप्ति के साधन के प्रति। यथा - सर्प के विष से मूर्च्छा, मृत्यु आदि दुःख होने के कारण सर्प के प्रति भी द्वेष होता है।

प्रयत्न - अन्नम्भट्ट ने 'प्रयत्न' का पर्याय 'कृति'

दिया है। यह तीन प्रकार का होता है - (i) प्रवृत्ति रूप - इच्छा से उत्पन्न होने वाला प्रयत्न, (ii) निवृत्ति रूप - द्वेष के कारण होने वाला प्रयत्न 'प्रवृत्ति' के विपरीत 'निवृत्ति' कहलाता है। तथा (iii) जीने के अदृष्ट (धर्माधर्म) से उत्पन्न साँस लेने जैसे कार्य को उत्पन्न करनेवाला प्रयत्न 'जीवन-योनि' कहलाता है।

धर्म - 'धर्म' शब्द 'धृ' (धारण) से निष्पन्न है अर्थात् जो धारण करता है, वह धर्म है। अन्नम्भट्ट ने धर्म की आचार्य प्रोक्त- 'यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः' परिभाषा न देकर - शास्त्रविहित कर्मों से होने वाला गुण- धर्म है - कहा है। सुख इस धर्म से होता है, शास्त्रविहित कर्मों से साक्षात् नहीं होता।

अधर्म - इसी प्रकार धर्म के विपरीत जो गुण है, वह 'अधर्म' है। शास्त्र द्वारा निषिद्ध सामान्य और विशेष कर्मों के करने से उत्पन्न 'पाप' नामक अदृष्ट - अधर्म होता है।

बुद्धि से लेकर अधर्म तक जो आठ गुण हैं वे आत्मा के विशेष गुण हैं अर्थात् वे केवल आत्मा में ही रहते हैं। इन गुणों में परस्पर कारण-कार्य सम्बन्ध है और ये इसी क्रम में गिनाये भी गए हैं। इनमें से प्रत्येक अपने से पूर्ववर्ती का कार्य और परवर्ती का कारण है। समस्त आन्तरिक अनुभवों का बुद्धि मूल है इनमें सुख और दुःख वे हैं जो हमें अभीप्सित हैं

या अनभीप्सित। सुख और दुःख का भाव इच्छा और द्वेष उत्पन्न करते हैं। इच्छा और द्वेष प्रयत्न उत्पन्न करते हैं। अच्छे प्रयत्न से धर्म और बुरे प्रयत्न से क्रमशः अधर्म उत्पन्न होता है। धर्म और अधर्म संस्कार उत्पन्न करते हैं और यही संस्कार जन्म-मरण का कारण है।

संस्कार - संस्कार तीन प्रकार के होते हैं - वेग, भावना और स्थिति स्थापक। संस्कारस्त्रिविधः - वेगो भावना स्थितिस्थापकश्चेति।

(i) वेग - वेग पृथिवी, जल, तेज और वायु और मन में रहता है - वेगः पृथिव्यादिचतुष्टयमनोवृत्ति। वेग मूर्त पदार्थों में भी रहता है, क्योंकि वेग तब तक नहीं रह सकता जब तक कि गति न हो, और गति सीमित पदार्थों की ही हो सकती है।

(ii) भावना - अनुभव से उत्पन्न और स्मरण की हेतु भावना केवल आत्मा में रहती है - अनुभवजन्या स्मृति हेतुर्भावनाऽऽत्ममात्रवृत्तिः। भावना वह है जो अनुभव से उत्पन्न होती है और स्मृति को जन्म देती है।

(iii) स्थिति स्थापक - अन्यथा की हुई को फिर उसी अवस्था में ला देने वाला स्थिति स्थापक गुण कटादि - पृथ्वी में रहता है - अन्यथा कृतस्य पुनस्तदवस्थापादकः कटादि पृथिवीवृत्तिः। स्थिति स्थापक वह शक्ति है जो पदार्थ को अपने पूर्व रूप में ले आती है। यह चटाई जैसे पदार्थों में पायी जाती है।